सत्यमेव जयते

भारत सरकार

भारत

का

विधि

आयोग

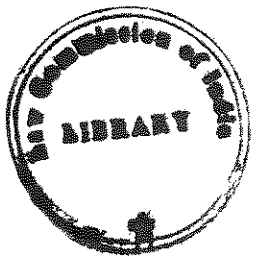

Law Commission of India
LIBRARY

अधीनस्थ सिविल न्यायालयों में अधिकतम प्रभार्य न्यायालय फीस नियत करने की आवश्यकता ।

रिपोर्ट सं. 220

मार्च, 2009

भारत का विधि आयोग

(रिपोर्ट सं. 220)

अधीनस्थ सिविल न्यायालयों में अधिकतम प्रभार्य न्यायालय फीस नियत करने की आवश्यकता ।

डा. न्यायमूर्ति एआर. लक्ष्मणन, अध्यक्ष, भारत का विधि आयोग द्वारा केन्द्रीय विधि और न्याय मंत्री, विधि और न्याय मंत्रालय, भारत सरकार को 30 मार्च, 2009 को अग्रेषित ।

18वें विधि आयोग का गठन भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय, विधि कार्य विभाग, नई दिल्ली के आदेश संख्या ए.45012/1/2006-प्रशा. III (एल ए) तारीख 16 अक्तूबर, 2006 द्वारा 1 सितम्बर, 2006 से तीन वर्ष के लिए किया गया ।

विधि आयोग अध्यक्ष, सदस्य-सचिव, एक पूर्णकालिक सदस्य और सात अंशकालिक सदस्यों से मिलकर बना है ।

अध्यक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डा. एआर. लक्ष्मणन, अध्यक्ष

सदस्य-सचिव

डा. ब्रह्म ए. अग्रवाल

पूर्णकालिक सदस्य

प्रोफेसर (डा.) ताहिर महमूद

अंशकालिक सदस्य

डा. (श्रीमती) देविन्दर कुमारी रहेजा

डा. के. एन. चन्द्रशेखरन पिल्लै

प्रोफेसर (श्रीमती) लक्ष्मी जामभोलकर

श्रीमती कीर्ति सिंह

न्यायमूर्ति आई. वेंकटनारायण

श्री ओ. पी. शर्मा

डा. (श्रीमती) श्यामला पप्पू

विधि आयोग आई. एल. आई. बिल्डिंग, द्वितीय तल, भगवानदास रोड, नई दिल्ली-110001 पर स्थित है ।

विधि आयोग के कर्मचारिवृंद

सदस्य-सचिव

डा. ब्रह्म ए. अग्रवाल

अनुसंधान कर्मचारिवृंद

श्री सुशील कुमार	:	संयुक्त सचिव और विधि अधिकारी
सुश्री पवन शर्मा	:	अपर विधि अधिकारी
श्री जे. टी. सुलक्षण राव	:	अपर विधि अधिकारी
श्री ए. के. उपाध्याय	:	उप विधि अधिकारी
डा. वी. के. सिंह	:	सहायक विधि सलाहकार
डा. आर. एस. श्रीनेट	:	अधीक्षक (विधि)

प्रशासनिक कर्मचारिवृंद

श्री सुशील कुमार	:	संयुक्त सचिव और विधि अधिकारी
श्री डी. चौधरी	:	अवर सचिव
श्री एस. के. बसु	:	अनुभाग अधिकारी
श्रीमती रजनी शर्मा	:	सहायक पुस्तकालय और सूचना अधिकारी

इस रिपोर्ट का पाठ **http://www.lawcommissionofindia.nic.in** पर इन्टरनेट पर उपलब्ध है ।

© भारत सरकार

भारत का विधि आयोग

इस दस्तावेज का पाठ (सरकारी चिह्न के सिवाय) इस शर्त के अधीन किसी प्ररूप या माध्यम में निःशुल्क पुनरुत्पादित किया जा सकता है बशर्ते कि यह ठीक-ठीक पुनरुत्पादित किया गया है और भ्रामक संदर्भ में प्रयोग नहीं किया गया है । सामग्री की अभिस्वीकृति भारत सरकार कापीराइट और विनिर्दिष्ट दस्तावेज के शीर्षक के रूप में की जाए ।

इस रिपोर्ट से संबंधित कोई पूछताछ सदस्य-सचिव, भारत का विधि आयोग, द्वितीय तल, आई. एल. आई. भवन, भगवानदास रोड, नई दिल्ली-110001, भारत को डाक द्वारा या ई-मेल : **Ici-dla@nic.in** द्वारा संबोधित किया जाए ।

डा. न्यायमूर्ति एआर. लक्ष्मणन
(भूतपूर्व न्यायाधीश, भारत का
उच्चतम न्यायालय)
अध्यक्ष, भारत का विधि आयोग

आई.एल.आई. भवन
(द्वितीय तल)
भगवान दास रोड,
नई दिल्ली-110001
दूरभाष- 91-11-22384475
फैक्स - 91-11-23383564

अर्ध. शा.सं. 6(3)/154/2007-एल सी(एल एस) 30 मार्च, 2009

प्रिय डा. भारद्वाज जी,

विषयः- **अधीनस्थ सिविल न्यायालयों में अधिकतम प्रभार्य न्यायालय फीस नियत करने की आवश्यकता ।**

मैं उपरोक्त विषय पर भारत के विधि आयोग की 220वीं रिपोर्ट अग्रेषित कर रहा हूं ।

विधिक सहायता पर न्यायमूर्ति कृष्ण अय्यर समिति ने यह उल्लेख किया कि "बलपूर्वक हम यह कहते हैं कि न्यायालय फीस के बोझिल पैमाने की बढ़ती बुराई को कम करने के लिए कुछ किया जाना चाहिए । यह स्पष्ट प्रतिपादना है कि राज्य को न्याय नहीं बेचना चाहिए लेकिन वहीं यह भी स्पष्ट है कि वर्तमान समय में उद्गृहीत न्यायालय फीस की उच्च दर कोई विधिमान्य स्वीकार्य स्थिति नहीं है ।"

उच्चतम न्यायालय ने सचिव, मद्रास सरकार बनाम पी. आर. श्रीरामुलु [(1996) 1 एस. सी. सी. 345] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया कि संपूर्ण देश में न्यायालय फीसों के मापदण्डों में एकरूपता के भी कुछ उपाय किए जाने चाहिएं क्योंकि देश के विभिन्न राज्यों में न्यायालय फीसों के मापदण्डों में भारी भिन्नता प्रतीत होती है । नियत अधिकतम प्रभार्य फीस की संभाव्यता पर भी गंभीर विचार किया जाना अपेक्षित है ।

निवासः सं. 1, जनपथ, नई दिल्ली-110001. टेली. 91-11-23019465, 23793488, 23792745. ई-मेल : ch.lc@sb.nic.in.

विधि आयोग ने "न्यायिक प्रशासन का सुधार" पर अपनी 14वीं रिपोर्ट में काफी पहले 1958 में भी यह सिफारिश की थी कि संपूर्ण देश में न्यायालय फीस के मापदण्डों में समानता के व्यापक उपाय किए जाने चाहिए और अधिकतम प्रभार्य फीस भी नियत की जानी चाहिए ।

"न्यायालय फीस संरचना का पुनरीक्षण" (2004) शीर्षक की अपनी 189वीं रिपोर्ट में आयोग ने उच्चतम न्यायालय द्वारा व्यक्त मत और आयोग की अपनी 14वीं और 128वीं रिपोर्टों में व्यक्त मत से भिन्न मत व्यक्त करने का कोई कारण नहीं पाया कि न्यायालय फीसों को बढ़ाने का वास्तविक कारण राज्यों द्वारा अधिक राजस्व का संग्रहण प्रतीत होता है जो एक ठोस लोक नीति नहीं है । दूसरी ओर, अधिक न्यायालय फीस से ईमानदार और असली गरीब वादकारी हतोत्साहित होगा । आयोग ने इस पर बल दिया कि न्यायालय फीस की किसी वृद्धि से न्याय पाने के अधिकार पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए । इसके अतिरिक्त, न्यायालय फीस के माध्यम से संगृहीत रकम सिविल न्याय प्रशसन में उपगत व्यय से अधिक नहीं होनी चाहिए । केवल इन्हीं परिसीमाओं के अध्यधीन रहते हुए, न्यायालय फीस अधिनियम, 1870 की अनुसूची 2 के अधीन विहित नियत न्यायालय फीस की रकम में वृद्धि रुपए के अवमूल्यन की सीमा तक अनुपाततः की जाए ।

उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, भारत के विधि आयोग ने स्वप्रेरणा से अध्ययन का कार्य अपने हाथ में लिया और उसकी यह विचारित राय है कि अधिकतम प्रभार्य न्यायालय फीस नियत करने की आवश्यकता है ।

सादर,

भवदीय, ह/-

(डा. न्यायमूर्ति एआर. लक्ष्मणन)

डा. एच. आर. भारद्वाज,
केन्द्रीय विधि और न्याय मंत्री,
भारत सरकार, शास्त्री भवन,
नई दिल्ली-110001

भारत का विधि आयोग

अधीनस्थ सिविल न्यायालयों में अधिकतम प्रभार्य न्यायालय फीस नियत करने की आवश्यकता ।

विषय सूची

		पृष्ठ सं.
1.	प्रस्तावना	9 - 11
2.	न्यायिक पुनर्विलोकन और भारत के विधि आयोग की पूर्व रिपोर्टें	12 - 20
3.	सिफारिश	20

I. प्रस्तावना

1.1 यह प्रतीत होता है कि सिविल न्यायालयों में न्यायालय फीस सर्वप्रथम 18वीं शताब्दी में मद्रास विनियमन III , 1782, बंगाल विनियमन XXXVIII, 1795 और बाम्बे विनियमन, 1802[1] द्वारा उद्गृहीत किए गए । यह विरोधाभासी ही है कि बंगाल विनियमन की प्रस्तावना में न्यायालय फीस के अधिरोपण को इस आधार पर न्यायोचित ठहराया गया था कि यह निरर्थक मुकदमेबाजी के संस्थित किए जाने को रोकेगा।[2]

1.2 विधिक सहायता पर न्यायमूर्ति कृष्णा अय्यर समिति ने यह उल्लेख किया कि "बलपूर्वक हम यह कहते हैं कि न्यायालय फीस के बोझिल पैमाने की बढ़ती बुराई को कम करने के लिए कुछ किया जाना चाहिए । यह स्पष्ट प्रतिपादना है कि राज्य को न्याय नहीं बेचना चाहिए लेकिन वहीं यह भी स्पष्ट है कि वर्तमान समय में उद्गृहीत न्यायालय फीस की उच्च दर कोई विधिमान्य स्वीकार्य स्थिति नहीं है ।[3] "

1.3 उपरोक्त के होते हुए भी, न्यायालय फीस स्थायी हो गई है । यह स्थिर विधि है कि फीस व्यापकतः सेवाओं के अनुरूप होनी चाहिए और सेवाओं की लागत से उसका युक्तियुक्त सह-संबंध होना चाहिए और यह कि न्यायालय फीस विधान का आशय लगभग विशुद्धतः राज्य को अतिरिक्त राजस्व के स्रोत के रूप में है जो या तो आवश्यक है या कुछ हद तक वर्तमान आर्थिक स्थिति में न्यायोचित है और यह आशा है कि आर्थिक स्थिति के समग्र सुधार से राज्य न्यायालय फीस की क्रमिक कमी और

---

[1] भारत का विधि आयोग, "न्यायिक प्रशासन का सुधार" पर 14वीं रिपोर्ट (1958)

[2] वही

[3] पी. एम. अश्वथनारायण सेट्टी बनाम कर्नाटक राज्य, 1989 सप्ली. (1) एस. एस. सी. 696 में निर्दिष्ट.

अन्ततः उत्सादन से वादकारियों को राहत देने की स्थिति में होगा । अब प्रश्न यह है कि क्या राज्य ऐसा अनुक्रम अपनाना चाहता है और तथ्य या विधि की दृष्टि से न्यायालय फीस का सावधिक पुनरीक्षण न्यायोचित है ।

1.4 उद्देश्यों और कारणों के कथन में यह उल्लेख किया गया कि सिविल वादों पर प्रभारित न्यायालय फीस की दरों में सामान्य कटौती करना और अधिकतम फीस के सिद्धांत पर वापस आना समीचीन था जो केन्द्रीय सरकार द्वारा अधिनियमित पूर्व विधि, न्यायालय फीस अधिनियम, 1870 (1870 का 7) के अधीन अभिप्राप्त किया गया था । संशोधनकारी अधिनियम के उद्देश्यों और कारणों में कथित अतिरिक्त राजस्व के द्वारा प्रशासन की बढ़ी लागत को पूरा करने के लिए 1922 में मद्रास राज्य में इसे लागू करने के लिए इस अधिनियम का संशोधन किया गया । यद्यपि दरों का पुनरीक्षण किया गया लेकिन स्लैब प्रणाली वैसी ही रही ।[4]

1.5 उच्चतम न्यायालय ने सचिव, मद्रास सरकार बनाम पी. आर. श्रीरामुलु[5] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया कि संपूर्ण देश में न्यायालय फीसों के मापदण्डों एकरूपता के भी कुछ उपाय किए जाने चाहिए क्योंकि देश के विभिन्न राज्यों में न्यायालय फीसों के मापदण्डों में भारी भिन्नता प्रतीत होती है । नियत अधिकतम प्रभार्य फीस की संभाव्यता पर भी गंभीर विचार किया जाना अपेक्षित है ।

1.6 विधि आयोग ने "न्यायिक प्रशासन का सुधार" पर अपनी 14वीं रिपोर्ट में काफी पहले 1958 में भी यह सिफारिश की थी कि संपूर्ण देश में न्यायालय फीस के मापदण्डों में समानता के व्यापक उपाय किए जाने

---

[4] मीनाक्षी सुन्दरम पंचापकेशन, अधीनस्थ सिविल न्यायालयों में संगृहीत न्यायालय फीस मूल्यानुसार, (2008) 6 एम. एल. जे. 131.

[5] (1996) 1 एस. सी.सी. 345.

चाहिए और अधिकतम प्रभार्य फीस भी नियत की जानी चाहिए ।[6]

1.7 उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, भारत के विधि आयोग ने स्वप्रेरणा से विषय का अध्ययन अपने हाथ में लिया ।

---

[6] पूर्वोक्त टिप्पण 1.

II . न्यायिक पुनर्विलोकन और भारत के विधि आयोग की पूर्व रिपोर्टें

2.1 मद्रास राज्य ने मद्रास न्यायालय फीस और वाद-मूल्यांकन अधिनियम, 1955 (1955 का अधिनियम 14) का अधिनियमन किया जिसमें सीमारहित साढे सात प्रतिशत एकरूप मूल्यानुसार फीस का उपबंध था । तद्नुसार, मद्रास उच्च न्यायालय ने मूल शाखा पर अपने नियमों को पुनरीक्षित किया और उच्च न्यायालय फीस नियम के आदेश 2 के नियम 1 द्वारा 1955 के अधिनियम 14 और इसके अधीन विरचित नियमों के अनुसार उद्ग्रहणीय 19.05.1955 को या इसके पश्चात् संस्थित सभी वादों में न्यायालय फीस नियत किया । 1955 के अधिनियम 14 की विधिमान्यता और शक्तिमत्ता को प्रश्नगत करते हुए उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय के समक्ष अनेक वाद इस आधार पर फाइल किए गए कि 1955 में न्यायालय फीस को बढ़ाने का कतई कोई औचित्य नहीं था और शुण्डाकार आधार पर स्लैब प्रणाली जो 1955 तक लागू थी, छोड़कर सीमारहित सभी दावों पर साढ़े सात प्रतिशत एक सपाट दर पर न्यायालय फीस के उद्ग्रहण को भी प्रश्नगत किया।[7]

2.2 मद्रास उच्च न्यायालय ने जेनिथ लैम्पस एंड इलैक्ट्रिकल्स लि. बनाम रजिस्ट्रार, उच्च न्यायालय, मद्रास[8] वाले मामले में राज्य की दलीलों को अस्वीकार कर दिया और यह अभिनिर्धारित किया कि प्रश्नगत उद्ग्रहण अत्यधिक, अयुक्तियुक्त और दी गई सेवा की तुलना में घोर अननुपातिक है और इसे असंवैधानिक ठहराते हुए अभिखंडित कर दिया ।

2.3 राज्य ने उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की और न्यायालय की पांच न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने राज्य द्वारा फाइल अतिरिक्त प्रति-

---

[7] पूर्वोक्त टिप्पण 4

[8] 1968 (1) एम. एल. जे. 37.

शपथपत्र पर विचार करने के लिए मामला वापस कर दिया।[9] प्रतिप्रेषण पर, उच्च न्यायालय ने 1975[10] में यह अभिनिर्धारित किया कि न्यायालय फीस अधिनियम की अनुसूची 1 का अनुच्छेद 1 और उच्च न्यायालय फीस नियम के आदेश 2 के नियम 1 का उप नियम (1) अविधिमान्य है और यह कहा कि प्राप्ति और न्यायालयों में सिविल न्याय प्रशासन की लागत पर व्यय के बीच कोई सह-संबंध नहीं है । उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने यह कहते हुए सीमारहित साढे सात प्रतिशत मूल्यानुसार एक सपाट दर के उद्ग्रहण को भी समाप्त कर दिया कि सत्यमूर्ति रिपोर्ट ने भी सीमारहित एक सपाट दर पर ऐसे बोझिल मूल्यानुसार फीस की सिफारिश नहीं की थी बल्कि वस्तुतः न्यायालय फीस के कम दरों का सुझाव दिया था ।

2.4 उपरोक्त निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील की गई और सचिव, मद्रास सरकार बनाम पी. आर. श्रीरामुलु[11] वाले मामले में न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने तारीख 22.11.1995 के अपने निर्णय में यह अभिनिर्धारित करते हुए मूल्यानुसार न्यायालय फीस के उद्ग्रहण की विधिमान्यता को कायम रखा कि मूल्यानुसार मापदण्ड पर न्यायालय फीस के द्वारा उद्गृहीत रकम का सिविल न्याय-प्रशासन में उपगत व्यय के बराबर या अनुरूप होना आवश्यक नहीं है और राज्य को आर्थिक विनियमनों के मामले में काफी स्वतंत्रता है और न्यायालय फीस में वृद्धि का मूल्यांकन न्याय प्रशासन की बढ़ी लागत के आधार पर राजस्व की बढ़ी आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए । तथापि,

---

[9] सचिव, मद्रास सरकार बनाम जेनिथ लैम्प एंड इलैक्ट्रिकल्स लि., 1974 (1) एम. एल. जे. 43.

[10] पी. आर. श्रीरामुलु बनाम रजिस्ट्रार, उच्च न्यायालय, मद्रास, 1975(1) एम. एल. जे. 390.

[11] (1996) 1 एस. सी. सी. 345.

न्यायालय ने 1955 के अधिनियम 14 द्वारा उद्ग्रहण में वृद्धि के औचित्य के अभिवाक् पर विचार नहीं किया जिस पर मामले को पहले न्यायालय द्वारा प्रतिप्रेषित किया गया था ।

2.5 दूसरी ओर, पी. एम. अवश्वथनारायण सेट्टी बनाम कर्नाटक राज्य[12] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया कि फीस और व्यय के बीच व्यापक और सामान्य सह-संबंध न कि सटीक या अंकगणितीय तुल्यता होनी चाहिए ।

2.6 जेनिथ लैम्पस एंड इलैक्ट्रिकल्स लि. बनाम रजिस्ट्रार, उच्च न्यायालय, मद्रास[13] वाले मामले में मद्रास उच्च न्यायालय ने यह अभिनिधारित किया कि फीस के लिए आय और व्यय के बीच सह-संबंध होना चाहिए अर्थात् उद्ग्रहण युक्तियुक्त होना चाहिए और सिविल न्यायालय में वादकारी पर कोई उद्ग्रहण जिसके द्वारा सामान्यतः राजस्व वसूला जाता है और उसके वाद हेतुक से असंबद्ध है, उस सीमा तक कर की प्रकृति की चुंगी होगी ।

2.7 सचिव, मद्रास सरकार बनाम जेनिथ लैम्प एंड इलैक्ट्रिकल्स लि.[14] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय का अधिनिर्णय इस प्रकार है :–

> " इस मामले में हमें राज्य के सिविल न्याय प्रशासन पर विचार करना है । फीस का सिविल न्याय प्रशासन से संबंध होना चाहिए.....। कुछ मामलों में थोड़ी फीस, अन्य मामलों में भारी फीस के उद्ग्रहण किए जाने की अनुच्छेद 14 के उपबंधों के अध्यधीन स्वतंत्रता है । लेकिन यह बात करने की विधान मंडल की सक्षमता नहीं है, कि

---

[12] पूर्वोक्त टिप्पण 3.
[13] पूर्वोक्त टिप्पण 8
[14] पूर्वोक्त टिप्पण 9.

वादकारियों को सामान्य लोक राजस्व की वृद्धि में अभिदायी न बनाया जाना है.....। संगृहीत फीस और सिविल न्याय प्रशासन की लागत में व्यापक सह-सबंध होना चाहिए.....। हम इस मामले में मद्रास उच्च न्यायालय से सहमत हैं कि न्यायालयों में ली जाने वाली फीस स्वयं में एक प्रवर्ग नहीं है और इसमें इस न्यायालय द्वारा यथा अधिकथित फीस के आवश्यक तत्व अवश्य अंतर्विष्ट होने चाहिए ।"

2.8 पी. आर. श्रीरामुलु बनाम रजिस्ट्रार,उच्च न्यायालय, मद्रास[15] वाले मामले में मद्रास उच्च न्यायालय का अधिनिर्णय इस प्रकार है :–

"उद्ग्रहण की विधिमान्यता की कसौटी के परीक्षण के लिए इसकी अनिवार्य प्रकृति पर विचार करना चाहिए कि क्या यह फीस की अवधारणा का समाधन करता है.....। एक वादकारी इस सिद्धांत पर न्यायालय फीस देता है कि वह न्यायालय द्वारा सिविल न्याय के प्रशासन में उनके द्वारा दी गई सेवाओं की लागत की प्रतिपूर्ति करने के लिए आबद्ध है और वह पेंशन प्रभारों के प्रति अदा करने का दायी नहीं है जो पूर्व अन्य वादकारियों के प्रति सेवानिवृत्त न्यायिक अधिकारियों द्वारा दी गई पिछली सेवाओं के संबंध में है । .....पूर्वगामी कथनों और आंकड़ों के विश्लेषण पर, हमारी यह स्पष्ट राय है कि श्री शिव कुमार के अनुपूरक प्रति-शपथपत्र से उपाबद्ध कथन I से III में वर्णित 1954-55 और पश्चात्वर्ती वर्षों में भी राज्य न्यायालयों में सिविल न्याय के प्रशासन की वास्तविक लागत से अधिक कई लाख रुपए और कुछ वर्षों में लगभग आधे करोड़ रुपए से अधिक लाभ कमा रहे थे ।"

---

[15] पूर्वोक्त टिप्पण 10.

2.9 सचिव, मद्रास सरकार बनाम पी. आर. श्रीरामुलु[16] वाले मामले उच्चतम न्यायालय का अधिनिर्णय इस प्रकार है :–

"किसी भी दशा में भी विधि की यह अपेक्षा नहीं है कि उद्ग्रहण माध्यम से उगाहा गया संग्रहण सिविल न्याय प्रशासन के व्यय के ठीक-ठीक बराबर या अनुरूप होना चाहिए । इस न्यायालय द्वारा पहले ही यह न्यादेश दिया गया है कि फीस के माध्यम से उगाही गई रकम और सेवाएं उपलब्ध कराने में उपगत व्यय की जांच किसी सटीकपन और अंकगणितीय तुल्यता सुनिश्चित करने की दृष्टि से नहीं की जानी चाहिए बल्कि परख का समाधान इस आधार पर किया जाना चाहिए कि क्या व्यापक और सामान्य सह-संबंध विद्यमान है.....एक बार यदि यह स्थापित हो जाता है कि प्राथमिक और आवश्यक प्रयोजन विनिर्दिष्ट वर्ग को विनिर्दिष्ट सेवाएं प्रदान करना है तो यह महत्वहीन हो जाता है कि राज्य ने अप्रत्यक्ष रूप से इससे कतिपय फायदे अर्जित किए हैं.....। इन मामलों को समाप्त करने के पहले, हम यह इंगित करते हैं कि इसे विवादित नहीं किया जा सकता कि न्याय प्रशासन एक सेवा है जो राज्य अपनी जनता को प्रदान करने के बाध्यताधीन है । दो राय नहीं हो सकती है कि फीस के माध्यम से वादकारी से उगाही गई रकम सामान्यतः न्याय प्रशासन की लागत से अधिक नहीं होनी चाहिए क्योंकि उच्च न्यायालय फीस से स्वयं को धनी बनाने या सामान्य प्रशासन के लिए राजस्व प्राप्त करने के लिए राज्य के पास कोई संभवतः औचित्य नहीं हो सकता । न्यायालय फीसों से कुल प्राप्तियां ऐसी होनी चाहिए जो कुल मिलाकर न्याय प्रशासन की लागत को पूरा कर सके । संपूर्ण देश में

---

[16] पूर्वोक्त टिप्पण 11.

न्यायालय फीस के मापदंडों में समरूपता के कुछ प्रयास किए जाने चाहिएं क्योंकि देश के वभिन्न राज्यों में न्यायालय फीस के मापदंडों में भारी भिन्नता है । नियत अधिकतम प्रभार्य फीस की संभाव्यता पर भी गंभीर रूप से विचार किए जाने की अपेक्षा है ।"

2.10 पी.एम. अश्वथनारायण सेट्टी बनाम कर्नाटक राज्य[17] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय का अधिनिर्णय इस प्रकार है :–

"फीस के माध्यम से उगाही गई रकम और सेवाएं उपलब्ध कराने में लगने वाले व्यय के बीच सह-संबंधता पर सह-संबंध में किसी सही-सही, अंकगणितीय तुल्यता या सटीकपन सुनिश्चित करने की दृष्टि से विचार किए जाने की आवश्यकता है ; लेकिन यह पर्याप्त होगा कि दोनों के बीच व्यापक और सामान्य सह संबंध है ।.....अब अंततः 'राजस्थान अधिनियम' और 'कर्नाटक अधिनियम' के अधीन न्यायालय फीसों की तार्किकता के संबंध में सुझाव देना आवश्यक हो जाता है । मामले की बहस से एक महत्वपूर्ण पहलू का पता चला । मूल्यानुसार 10 प्रतिशत की दर से न्यायालय फीस का उद्ग्रहण निष्ठुर लगता है और प्रायः कई व्यथित वादकारियों की पहुंच से बाहर न्याय खरीदने के समान है । राज्य के नीति निदेशक तत्व, यद्यपि न्यायालयों द्वारा कड़ाई से प्रवर्तनीय नहीं है फिर भी देश के अभिशासन में आधारभूत हैं । ये कल्याणकारी राज्य में सर्वप्रिय न्याय गठित करते हैं । बड़े दावों में ऊपरी सीमा के बिना छोटे दावों में भी न्यायालय फीसों के ऐसे उच्च दरों का आदेश निश्चित रूप से मनमानेपन या असंवैधानिकता के निकटस्थ है ।

---

[17] पूर्वोक्त टिप्पण 3

वस्तुतः, ऐसी स्थिति आदर्श स्थिति है जहां राज्य अपने न्यायालयों में न्याय के लिए कीमत लेने से बचने में समर्थ हैं । ऐसा आदर्श प्राप्त करने के लिए श्री राबर्ट केनेडी के शब्दों को स्मरण रखना श्रेयस्कर है : "कुछ आदमी वही बात सोचते हैं जो प्रत्यक्ष है और यह कहते है कि मैं ऐसा स्वप्न क्यों देखूं जो कभी नहीं था और कहते हैं कि क्यों नहीं देखूं" ..... संबद्ध सरकारों को इन मामलों पर ध्यान देना चाहिए और उद्ग्रहणों के तार्किक बनाना चाहिए ।"

2.11 भारत के विधि आयोग ने अपनी निम्नलिखित रिपोर्टों में न्यायालय फीस के उद्ग्रहण के मुद्दे पर विचार किया :–

(क) "न्यायिक प्रशासन का सुधार" शीर्षक 14वीं रिपोर्ट (1958) – आयोग ने यह मत व्यक्त किया कि यह तर्क तत्वहीन है कि निरर्थक मुकदमेबाजी को रोकने के लिए उच्च न्यायालय फीस का अधिरोपण आवश्यक है ; ये वृद्धियां न्याय प्रशासन की बढ़ी लागत के आधार पर बढ़े राजस्व की आवश्यकता के आधार पर सामान्यतः न्यायोचित रही है, और इस प्रकार सिफारिश की थी :–

(1) न्याय प्रशासन के लिए तंत्र उपलब्ध कराना राज्य का प्राथमिक कर्तव्य है और सिद्धांततः, न्यायालयों को वादकारियों से फीस प्रभार करना राज्य के लिए उचित नहीं है ।

(2) चाहे न्यायालय फीस प्रभारित की जाए, फिर भी उनसे लिया गया राजस्व सिविल न्याय के प्रशासन की लागत से अधिक नहीं होना चाहिए ।

(3) राज्य द्वारा न्याय प्रशासन से लाभ कमाना न्यायोचित नहीं है ।

(4) न्यायालय फीस को कम करने के उपाय किए जाने चाहिए जिनसे कि इससे प्राप्त राजस्व सिविल न्याय प्रशासन की लागत को पूरा करने के लिए पर्याप्त हो । ऐसे स्थापन की लागत तय करने के लिए इंग्लैंड में लागू सिद्धांतों के सदृश सिद्धांत लागू किए जाने चाहिए । न्यायिक अधिकारियों के वेतन का प्रभार सामान्य करदाता पर डाला जाना चाहिए ।

(5) संपूर्ण देश की न्यायालय फीस के मापदण्डों में व्यापक समानता होनी चाहिए । अधिकतम प्रभार्य फीस भी नियत होनी चाहिए ।[18]

(ख) "मुकदमेबाजी की लागत" शीर्षक 128वीं रिपोर्ट (1988) में आयोग ने अपनी 14वीं रिपोर्ट में व्यक्त मत की पुष्टि की ।

(ग) "न्यायालय फीस संरचना का पुनरीक्षण" (2004) शीर्षक की अपनी 189वीं रिपोर्ट में आयोग ने उच्चतम न्यायालय द्वारा व्यक्त मत और आयोग की अपनी 14वीं और 128वीं रिपोर्टों में व्यक्त मत से भिन्न मत व्यक्त करने का कोई कारण नहीं पाया कि न्यायालय फीसों को बढ़ाने का वास्तविक कारण राज्यों द्वारा अधिक राजस्व का संग्रहण प्रतीत होता है जो एक ठोस लोक नीति नहीं है । दूसरी

---

[18] पूर्वोक्त टिप्पण, 1 जिल्द 1, पृठ 505, 509-510.

ओर, अधिक न्यायालय फीस से ईमानदार और असली गरीब वादकारी हतोत्साहित होगा । आयोग ने इस पर बल दिया कि न्यायालय फीस की किसी वृद्धि से न्याय पाने के अधिकार पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए । इसके अतिरिक्त, न्यायालय फीस के माध्यम से संगृहीत रकम सिविल न्याय प्रशासन में उपगत व्यय से अधिक नहीं होनी चाहिए । केवल इन्हीं परिसीमाओं के अध्यधीन रहते हुए, न्यायालय फीस अधिनियम, 1870 की अनुसूची 2 के अधीन विहित नियत न्यायालय फीस की रकम में वृद्धि रुपए के अवमूल्यन की सीमा तक अनुपाततः की जाए । [19]

III. सिफारिश

3. उच्चतम न्यायालय द्वारा व्यक्त मत के अनुसार, न्यायालय फीसों के मापदण्डों में समानता के कुछ उपाय किए जाने चाहिए । भिन्न-भिन्न वादकारियों के साथ भिन्न-भिन्न बर्ताव का कोई औचित्य नहीं है । अतः, सरकार को नियत अधिकतम प्रभार्य न्यायालय फीस की संभाव्यता पर गंभीरतापूर्वक विचार करना चाहिए । तद्नुसार हम सिफारिश करते हैं ।

ह/-

(डा. न्यायमूर्ति एआर. लक्ष्मणन)

अध्यक्ष

ह/-	ह/-
(प्रोफेसर (डा.) ताहिर महमूद	(डा. ब्रह्म ए. अग्रवाल)
सदस्य	सदस्य-सचिव

---

[19] भारत का विधि आयोग, "न्यायालय फीस की संरचना का पुनरीक्षण" (2004) पर 189वीं रिपोर्ट, पृष्ठ 96, 112-113.